स्त्री-विमर्श का सौन्दयशास्त्र

* मनोज कुमार सिंह

सौन्दर्य–शास्त्र हिन्दी में एस्थेटिक्स का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है। कुछ लोग इसे नन्दनशास्त्र भी कहते है। किन्तु सौन्दर्य–शास्त्र के सच्चे स्वरुप और व्ययदेश को अच्छी तरह समझने के लिए एस्थेटिक्स शब्द पर ही विचार करना आवश्यक है।

कहा जाता है कि एस्थेटिक्स शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है। जिसका मूलरुप atoqntikos यही ग्रीक शब्द बाद में Aesthesis बनकर उपस्थित हुआ, जिसका अर्थ होता है– ''ऐन्द्रिय सुख की चेतना'' तदनन्तर इस Aesthesis से ''एस्थेटिक'' शब्द बना। पाश्चात्य साहित्य में पहले एस्थेटिक शब्द ही प्रचलित था ''एस्थेटिक्स'' नहीं। बहुत बाद में इस शब्द का बहुवचन रुप ''एस्थेटिक्स'' प्रचलित हुआ।

इस अभिधान का अर्थ– विकास क्रमशः इस प्रकार हुआ है–

1. सर्वप्रथम बाउमगार्तेन ने इसका प्रयोग संवेदनशील ऐन्द्रियबोध के शास्त्र के अर्थ में किया।
2. तत्पश्चात, हीगेल ने इसका प्रयोग ललित कलाओं के दर्शन के अर्थ में किया।
3. तदन्तर, इसका सामान्य प्रयोग सौन्दर्य के विश्लेषणात्मक निरुपण के अर्थ में होने लगा।

इस प्रकार इसका आशय निकला कि एस्थेटिक्स का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन।

किन्तु बाद में ''एस्थेटिक्स'' उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रियबोध से प्राप्त सौन्दर्य–भवन के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है।

इस प्रसंग में दो बाते प्रमुख रुप से है पहली बात यह कि सौन्दर्य–शास्त्र के अन्तर्गत विचारणीय ऐन्द्रिय बोधों या प्रत्यक्षों में प्रायः

---

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय।

चाक्षुण और श्रावण प्रत्यक्षों की प्रमुखता रहती आयी है।

दूसरी बात यह है कि सौन्दर्य–शास्त्र के अन्तर्गत प्रमुखतः तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है–ऐन्द्रिय सौन्दर्य, विधानगत सौन्दर्य और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य।

यहाँ यह धारणा समीचीन मालूम पड़ती है कि प्रथम अर्थ–विकास के अनुसार एस्थेटिक्स वह शास्त्र है जिसका सम्बन्ध कला और प्रकृति में व्याप्त समग्र 'सुन्दर' और ''उदात्त'' से है।

कहा जाता है कि इसी अर्थ में एस्थेटिक्स शब्द का प्रचार जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, इटली और हालैण्ड में हुआ।

इस अर्थारोहण के पश्चात ''एस्थेटिक्स'' का विषय सौन्दर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है।

पंचयणेश शास्त्री ऐसे लेखक है जिन्होने सौन्दर्य–शास्त्र का दर्शनशास्त्र का अनुचर बनाकर यह लिख दिया कि सौन्दर्य–शास्त्र रसानुभूति से प्राप्त आनन्द का दार्शनिक विवेचन है दूसरी ओर चार्ल्स मोरो जैसे मनोविज्ञान–प्रेमी फांस, इंग्लैण्ड, इटली और हालैण्ड में हुआ।

इस अर्थारोहण के पश्चात ''एस्थेटिक्स'' का विषय सौन्दर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है।

पंचयणेश शास्त्री ऐसे लेखक हैं जिन्होंने सौन्दर्य–शास्त्र को दर्शनशास्त्र का अनुचर बनाकर यह लिख दिया कि सौन्दर्यशास्त्र रसानुभूति से प्राप्त आनन्द का दार्शनिक विवेचन है दूसरी ओर चार्ल्स मोरो जैसे मनोविज्ञान–प्रेमी विचारक है, जिन्होने औचित्य की अवहेलना कर सौन्दर्यशास्त्र को मनोविज्ञान की एक शाखा के रुप में स्वीकार किया है।

सौन्दर्यशास्त्र के व्यदेश–निर्धारण की समर्थ चेष्टा हीगेल ने की है।

इन्होने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''द फिलासफी आव फाइन आर्ट'' की भूमिका में सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हुए यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध सौन्दर्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है, सही अर्थ में सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ है, अन्य माध्यमों से अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ नहीं।

क्रोंचे ने 'एस्थेटिक्स' को अभिव्यक्ति की पुनः प्रत्यक्षात्मक तथा कल्पनात्मक क्रियाओं का विज्ञान माना है।

आधुनिक युग के भारतीय विचारकों में सौन्दर्यशास्त्र पर काम करने वालों की संख्या बहुत ही नगण्य है। डा0 के0सी0 पाण्डेय, मर्टेकर, के0एस0 रामस्वामी शास्त्री इत्यादि जैसे– वह लेखक है, जिन्होने सौन्दर्यशास्त्र के व्ययदेश और विषय सीमा पर विचार किया है। श्री के0एस0 रामस्वामी ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन एस्थेटिक्स' में यह मत बहुत बल के साथ प्रतिपादित किया है कि सौन्दर्यशास्त्र केवल पाश्चात्य देशों में ही विकसित नहीं हुआ है, बल्कि भारतवर्ष में भी इसकी स्पष्ट परम्परा है।

इस परम्परा को ध्यान में रखते हुए इन्होने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की कुछ अनन्वय किया है जैसे भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में आनन्द और रस की धारणा अथवा अभिनव गुप्ता द्वारा निरुपति काव्य–तत्वों के बीच ''चासत्व प्रतीत'' की धारणा।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत क्षेमेन्द्र के ''औचित्य–सिद्धान्त'' को विशेष महत्वपूर्ण मान सकते है क्योंकि यह औचित्य–सिद्धान्त काव्य की तरह अन्य ललित कलाओं पर भी सामान्य रुप से लागू होता है।

भारतवर्ष के विचारकों का एक वर्ग सौन्दर्यशास्त्र को कान्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र या साहित्य विधा का पर्याय मानता है।

किन्तु ऐसा मानना दूसरे खेमे के विचारकों की दृष्टि मे अनुचित है क्योंकि काव्यशास्त्र केवल काव्य का शास्त्र है और उसके अध्ययन की सीमा केवल काव्य तक सीमित है, जबकि सौन्दर्यशास्त्र सभी ललित कलाओं का शास्त्र है और उसकी सीमा काव्य के साथ सभी कात्येत्तर कलाओं, स्थापत्य मूर्ति, चित्र और संगीत तक फैली हुई है। इसलिए सौन्दर्यशास्त्र मात्र काव्यशास्त्र नहीं, बल्कि कलाशास्त्र है।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की प्रारम्भिक सीमा नाट्यशास्त्र है। इस प्रकार भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की विकास–रेखा को निर्दिष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ सबसे पहले नाट्यशास्त्र का विकास हुआ, दूसरी दशा में काव्यशास्त्र जिसमें नाट्यशास्त्र भी गतार्थ है, का और अन्त में

इन विकास–दशाओं के समीकरण से सौन्दर्यशास्त्र का अवतरण हुआ। हिन्दी के विचारकों ने सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है– ''वस्तु और व्यक्ति के बीच तादात्म्य हो जाना सौन्दर्यशास्त्र कहलाता है।''

सौन्दर्यशास्त्र के विचारको ने सौन्दर्य की परिभाषाएं अनेकों प्रकार से बतलाई है यूनान के विचारकों में मुख्य रुप से सुकरात ने सौन्दर्य के विषय में कहा है– ''सुन्दर और शिव एक है, प्रातः सुन्दर जीवन–सापेक्ष है।''

दूसरी तरफ जर्मनी के बाउमगार्तेन ने सौन्दर्य के विषय में कहा है कि– ''प्रकृति सौन्दर्य का चरम प्रतिमान है। इसलिए प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य–सृजन है।

इंग्लैण्ड के विचारक शैफ्ट्सबरी का मानना है कि – ''सौन्दर्य और परम विभु एक है।''

दूसरी तरफ एडिसन का मानना है कि– ''सौन्दर्य परिवेश और संगीत का फल है।'' रुस के विचारक चर्नाशेब्सकी ने ''सौन्दर्य ही जीवन'' कहा है।

इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्र की विवेचना के उपरान्त वर्तमान परिदृश्य में स्त्री–विमर्श को केन्द्र मे ंरखकर उस सौन्दर्य शास्त्र पर चर्चा करना अति आवश्यक है।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' ''एक नहीं दो–दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।''

''स्त्रियःसत्यायते अपत्र पठाकेर्मणः।''

वेदों, पुराणों, ब्राहम्णों जैसे ग्रन्थों तथा कवियों द्वारा सम्मानित अनेकानेक अलंकारों से सुसज्जित, भद्रा रोद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, कृष्णा, ध्रुमरा, देवी आदि नामों से और रुपों से सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती में गौरवमण्डित यह नारी देवताओं द्वारा पूजनीय मानी गई।

प्रकृति के प्रत्येक अंश में विद्यमान कहीं शक्ति, कहीं चेतना, कहीं लज्जा, कहीं प्रतिष्ठा कहीं निक्रा तथा कहीं श्रद्धा आदि अनेकानेक नामों से देवी स्वरुपा नारी स्तुत्य और सुसज्जित रही है।

पित्रों का और अपना (पुरुष) स्वर्ग सबको नारी के अधीन–

''दाराधीरास्वया स्वर्गः पितृणा मात्मनश्चीह।'' (मनुस्मृति 9/28) मानने वाला हमारा पुरुष प्रधान समाज और साहित्य नारी की प्रसन्नता में ही सबकी प्रसन्नता और नारी के दुख में सम्पूर्ण परिवार के दुःखी होने की धारणा (स्त्रियां तुरोचभानायां, सर्व तद्रोचते कुलम। तस्या त्वरोचभानायां सर्वमेश न रोचते। (मनुस्मृति 3/62) रखने वाले मनु के संसार में जहाँ सदैव नारी का मान–सम्मान करने की बात कही गई है।

ऐसे में ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई नारी पर पुनः विचार करने की। उसकी सत्ता, उसके अधिकार, उसके अस्तित्व को फिर से टटोलने की, उस पर विमर्श करने की।

भारतीय वाङ्मय में नारी की छवि अन्तकाल से ही अपराजय, सबला, निर्मला, सती, व्यवहारकुशलता, समयानुकूल अपनी स्थिति और शक्ति का परिचय देने वाली विवकेशीला विदुषी की रही है। उसकी शक्ति का स्रोत रही है। वह एक ही समय पर अनेक हैं यह सब जानते हुए भी आज फिर उस पर विमर्श करने की आवश्यकता क्यों पड़ी है। क्यों नहीं पुरुष–विमर्श की बात की जाती। इसके पीछे साफ–साफ पुरुष प्रधान समाज की राजनीति की विसात बिछी है। जिस पर प्यादों के स्थान पर नारी को ही विभिन्न चालों में चलाया जा रहा है।

वह नारी जो कभी शील, सौन्दर्य, सौम्यता और शालीनता की मूर्ति थी उसे ही पुरुष समाज ने गली, मोहल्लों, चौराहों और चौपालों की चर्चा का केन्द्र बना लिया है। वैसे किस हद तक इन चर्चाओं के लिए नारी भी जिम्मेदार है।

वर्तमान में विगत 15–20 वर्षों से चिन्तन का मुख्य विषय ''नारी–विमर्श'' रहा है।

नारी शब्द का सर्वप्रथम संकेत ''पारस्कर गृहसूत्र'' तथा अथर्वेद में मिलता है– विवाह काल में कन्यादान–पाणिग्रहण के बाद लाजाहोम में कन्या अपने लिए अपने मुख से नारी शब्द का सबसे पहले प्रयोग करती है। (पासकर गृहसूत्र 1/6/2) अर्थवेद 14/2/63) क्योंकि इससे पहले उसका नर–सम्बन्ध नहीं रहा है।

वैसे तो नारी–विमर्श नारी के जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाता है उसे क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, क्या पहनना चाहिए, क्या कहना चाहिए कैसे बैठे, किससे बोले, कैसे बोले, कहाँ जाए? आदि मगर ये सब उसे बंधन में बाँधने के विमर्श है।

उसकी मानवीय धरातल पर पहचान बनाने के लिए साहित्यिक स्तर पर कई आन्दोलन भी छिड़े है जिनको वर्तमान में ''नारी–विमर्श का स्वरुप'' उसका अर्थ कुछ विशिष्ट अर्थों का पर्याय बन गया है। जिसने दैहिक स्वतन्त्रता, उन्मुक्त भोग तथा यौन मुक्ति जैसी आजादी का स्थान ले लिया है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि जीवन्त प्राणी के लिए देह ही ऐसा ''सिम्बल'' है जिससे उसकी पहचान है लेकिन इस देय का इस प्रकार दोहन, प्रदर्शन शोषण समाज मे ंएक विस्फोटक स्थिति है।

भक्तिकाल के संत–कवियों से आज के स्त्री–विमर्श की कसौटी पर खरे उतरने की माँग करना असंगत है परन्तु उनके समय और समाज का ध्यान रखते हुए आज के सन्दर्भ में उनकी जरुरत को रेखांकित करना भी कम आवश्यक नहीं है।

कबीर के काव्य में स्त्री–विमर्श

कबीर का स्त्रीमन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज की मुख्य इकाई परिवार है।

सर्वप्रथम परिवार ही स्त्री का ''कंस्ट्रक्ट'' तैयार करता है।

कबीर परिवार में स्त्री की विडम्बनापूर्ण स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं

''सासु ननद दोउ देत उलाहन रहब लाज मुख गाइ हो।।''

डा0 पुरुषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में कहना उचित है– ''कबीर के सारे पदों, साखियों को यदि विराट रचना के रुप में पढ़े तो देखेंगे कि यह प्रेमाभिव्यक्ति के धरातल पर नारी की कविता है– नारी के बारे में कविता नहीं।''

सूर के काव्य में स्त्री–विमर्श

सूर की स्त्रियाँ व्यक्ति–चेतना से सम्पन्न एक स्वतंत्र इकाई है। सूर की गोपियाँ, पितृसत्तात्मक सामंती व्यवस्था की स्त्रियाँ नहीं है। सूर का वृन्दावन एक उन्मुक्त समाज की प्रतिच्छवि है। उस समाज की संरचना पदानुक्रमिक सामंती सामाजिक व्यवस्था से मुक्त है इसलिए पितृसत्तात्मकता के दबावों से भी मुक्त है।

मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहें, तो सूर का वृन्दावन ऐसा ही यूटोपिया है, जिसमें समाज की स्मृति और भावी समाज की संभावना का योग हैं। किसी भी समाज में, स्त्री की स्थिति पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था तय करती है। सूर का समाज पितृसत्तात्मक विचारों से मुक्त समाज है।

सूर के यहाँ स्त्री–विमर्श न केवल अपने समय के समाज से बल्कि आज के समाज से भी बहुत आगे है।

तुलसी के काव्य में स्त्री–विमर्श

तुलसी के सभी पात्र मर्यादा की नियति में बँधे हैं। राम की नियति है सीता की अग्नि परीक्षा लेना और सीता की नियति है अग्नि परीक्षा देना। ''शुचिता का ''कंस्ट्रक्ट'' स्त्री से भयभीत होकर पुरुष ने तैयार किया है। कहीं न कहीं तुलसी भी इस भय से मुक्त नहीं थे। उनके व्यक्तिगत जीवन को लेकर प्रचलित किवदंतियाँ (पत्नी से उनके सम्बन्ध) भी इस बात की पुष्टि करती है। मर्यादा से आक्रांत तुलसी शायद इसलिए भी राम की बहुरिया न बनकर राम के दास बनकर रह जाते हैं। प्रेम और दासता में निहित अंतर के कारण ही कबीर और तुलसी के स्त्री–विमर्श में भिन्नता है।

साहित्यिक स्तर पर हमारे यहाँ नारी विमर्श नारी चेतना, नारी अस्मिता, नारी अस्तित्व नारी संघर्ष की बात कला जगत में 1870 में पण्डित गौरी दत्त के उपरान्त ''देवरानी जेठानी की कहानी'' से आरम्भ होती है जिसमें नारी शिक्षा की अनिवार्यता और विधवा विवाह के पुरजोर सिफारिश की गई है।

इसके बाद मुंशी ईश्वरी प्रसाद का मुर्दर्रिस, 1972 में मुंशी कल्याण

राम का ''वामा–शिक्षक'' 1977 में श्रद्धा राम फल्लौरी का ''भाग्यवती'' उपन्यास आया जिसकी नायिका भाग्यवती प्रत्येक स्त्री को निडर बनने और कानून की शिक्षा प्राप्त करने का मशवरा देती है ताकि वे स्वावलम्बी बन अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सके।

गबन, गोदान, निर्मला, मनोरमा, सेवासदन जैसे उपन्यास तथा मानसरोवर (कथा–संग्रह) के दोनों खण्डों में इनकी कहानियाँ विश्व स्तर पर नारी–विमर्श का अद्वितीय उदाहरण हैं। उपन्यासों में हमारे सामाजिक कार्यकर्ता और समाज सुधारकों के सभी क्रान्तिकारी विचारों, सिद्धान्तों व संघर्षो का इतिहास उद्देश्यपरक ढंग से दिया गया है। तत्कालीन समाज सुधारकों ने नारी को जो दर्जा समाज में दिलाने का प्रयास किया था उसके अन्तर्गत नारी शिक्षा, विधवा समस्या, बाल–विवाह, अनमेल विवाह जैसी सभी समस्याओं को उठाया गया हैं समाज में आए नारी जीवन के उत्साहपूर्ण उन्नतिपरक परिवर्तन का श्रेय हमारे पुरुष क्रान्तिकारियों, लेखों और विचारकों को ही नहीं जाता बल्कि स्वयं नारी ने भी अपनी पहचान को बनाने के लिए अद्वितीय भूमिका अदा की है। समाज में आए नारी जीवन के उत्साहपूर्ण उन्नतिपरक परिवर्तन का श्रेय हमारे पुरुष क्राान्तिकारियों, लेखों और विचारकों को ही नहीं जाता बल्कि स्वयं ने भी अपनी पहचान को बनाने के लिये अद्वितीय भूमिका अदा की है। सर्वप्रथम बंग महिला की ''दुलाईवाली'' इसका उदाहरण है जिसमें नारी अधिकारों पर किसी नारी ने सर्वप्रथम लेखनी चलाई। नारी संघर्ष, उसकी पीड़ा, उसकी वेदना, उसके अन्तर्मन की दुखती रग को छेड़ बंग महिला ने उसे मुक्ति का मार्ग दिखाया। तत्पश्चात महादेवी वर्मा जी की ''श्रृंखला की कड़ियाँ'' ने नारी अधिकारों की सशक्त पक्षधर बन भारतीय नारी के चारों तरफ जकड़ी अशिक्षा, पर्दा, दासत्व और घुटन की विवशता की कड़ियों को तोड़ने का काम किया हैं। प्रत्येक रचनात्मक का अपना एक विशिष्ट सोच होता है। कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचन्द की सोच, उनका नारी–विमर्श भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध के रुप में उभरकर आया है। अपने

कथा–जगत के माध्यम से उन्होंने नारी को एक ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति दिलाने की कोशिश की है तो दूसरी ओर उसे शिक्षिता बना आर्थिक रुप से सम्पन्न और स्वतन्त्र बनाने का प्रयास भी किया है।

नारी को ''सम्पत्ति के स्थान पर जीवन्त प्राणी–– का दर्जा दिया (कुसुम में मानसरोवर–2, पृ0 19) नारी को उसका आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, पुनः दिलाकर धर्म की खोखली दलीलों को नकारते हुए उसे किसी का भी मोहताज न बन स्वावलम्बी बनाया– '' अगर पुरुषस्त्री का मोहताज नही तो स्त्री भी पुरुष की मोहताज क्यों (कुसुम, पृ0 14) 'गबन' 'गोदान' 'सेवासदन' की 'जालपा' 'सुमन' 'धनिया' जैसी औपन्यासिक पात्राओं के द्वारा तथा नैराश्य लीला घास वाली कुसुम जैसी कथा जगत की नारियों के द्वारा प्रेमचन्द ने न केवल वैचारिक क्रान्ति ही की बल्कि सामाजिक स्तर पर भी नारी–विमर्श का बिगुल बजा दिया।

भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री पुनः कुछ नये सवाल उठा रही है। इस बार स्त्री केवल सत्ता से नहीं बल्कि दूसरे दौर की नारीवादी चिंतकों से कह रही है हमने अपने भीतर की औरत को खोज निकाला है।

जैसे स्माइले जैसी नारीवादी उपन्यासकार का कहना है– ''मै सुन्दर भी दिखना चाहती हूँ और बुद्धिमान भी मुझे दोनों की जरुरत है और दोनों को ही मैं हासिल करके रहूँगी।

स्त्री की भूमिका में नये–नये आयाम जुड़ रहे है। भोगवाद सेक्सवाद सभी का प्रचलन बढ़ रहा है कहा जा रहा है कि उत्पीड़न की चर्चा के बदले अच्छा होगा स्त्री समाज, स्त्री पुरुष, सेक्स और सौन्दर्य को अपनाकर चले।

सत्तर के दशक में 'सीमोन द बोउआर' ने लिखा था– '' चेहरे पर एक हल्की सी झुर्री लिपिस्टिक का होंठों पर जरा सा छितरा जाना उसका सारा दिन खराब करने को काफी है। स्त्री को यदि मुक्ति चाहिए तो पहले गहने–कपड़ों से, प्रसाधन से मुक्ति पा ले। ये तो बेड़ियां जिन्हें अब तक अज्ञानतावश वह पहनती रही और वस्तु रुप में स्वयं को पेश करती रही।''

भारतीय साहित्य में नारी–विमर्श वात्स्यायन के कामसूत्र और

बौद्धकालीन रचना 'थेरी–गाथा' 'सूरदास के भ्रमरगीत', सूरसागर, मीरा की पदावलियों में अपने उत्कर्ष पर दिखाई पड़ते है। नारी जब तक अपने अन्तःकरण को नहीं पहचानती है तब तक ही वह कमजोर है, उसका मनोबल किसी भी पुरुष, किसी भी देवता को धता बता सकता है।

आजादी के बाद अनेकानेक परिवर्तनों के साथ–साथ जो एक नया बोध उभरकर आया वह आधुनिक बोध, यथार्थबोध के नाम पर उच्श्रृंखलता, उन्मुक्तता और निरंकुशता के रुप में उभरकर आया। लेखन स्वतन्त्रता के नाम पर नारी देह को उघाड़कर रखा जाने लगा। पर्दानशी, मर्यादाशील, घर में दबी ढकी औरत से सबका मोहभंग हो गया और उसके एक–एक वस्त्र उतरने लगे। जहाँ धर्मान्धता, अशिक्षा, पर्दा, सती, विधवा जैसी यंत्रणापूर्ण कुप्रथाओं से नारी को मुक्ति दी गई वही उसके दैहिक मुक्ति का भी चलन बताया गया।

खुद औरत भी घर की देहरी से बाहर क्या निकली राजसत्ता के साथ–साथ अपने देह सत्ता को भी पहचान लिया जिसकी अभिव्यक्ति इस्मत चुगतई की ''लिहाफ'' कृष्णा सोबती के ''मित्रों मरजानी'', ''सूरजमुखी अंधेरे के'', ''यारों के यार'' मृदुला गर्ग के कठगुलाब, उसके हिस्से की धूप, मन्नू भण्डारी की ''आपका बंटी'', अमृता प्रीतम के 'रसीदी टिकट'' ''चक नम्बर 36'' में साफ देखा जा सकता है।

दूसरी कड़ी में प्रभा खेतान के ''छिन्नमस्ता'', 'पीली आँधी'', मैत्रेयी पुष्पा के ''चाक'', 'झूठा नट'', ''इदन्नम्', 'अल्मा कबूतरी'' अलका सरावगी का ''कलिकथा–वाया बाइपास'' नासिरा शर्मा का ''ठीकरे का मंगनी'' तथा ''शाल्मली'' दीप्ति खंडेलवाल का प्रतिध्वनियाँ, ''देह की सीता'' उशा प्रियम्वदा का ''पचपन खम्भे लाल दीवारे'' ''शेश–यात्रा'' तथा रुकोगी नहीं राधिका, कुसुम अंसल का उसकी पंचवटी, ''तापसी'' तथा 'अपने–अपने रास्ते', मंजुल भगत का 'अनारो' राजी सेठ का तत्सम, '' निश्कवच'' चित्र मुद्गल का ''आवाँ'' एक ''जमीन अपनी–अपनी'' गीतांजलि श्री का

''तिरोहित'', माई मृणाल पांडे की लड़कियाँ प्रथा शास्त्री का सीढिया, मेहरुन्निसा परवे का 'अकेला पलाश, ममता कालिया का 'बेघर' 'एक पत्नी के नोट्स' 'बोलने वाली औरत आशापूर्ण देवी का 'प्रथम प्रतिश्रुति' जैनेन्द्र का ''सुनीता'', त्यागपत्र, ''पतिता'' 'कल्याणी'' सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए'' अज्ञेय का अपने—अपने 'अजनबी' नदी के द्वीप, सुशील कुमार सिंह के सत्यावती, गांधारी, कुती, देवकी रुकमणी और पांचाली तथा कृष्ण बलदेव वैद के उसका बचपन, एक नौकरानी की डायरी, जैसे उपन्यास तथा कृष्णा अग्निगोत्री की अपने—अपने कुरुक्षेत्र, नवनीत मिश्रा की परास्त, उषा महाजन की शोषित अखिलेश की यशगान, ममता कालिया की बोलने वाली औरत, मधु कांकरिया की नामर्द, चन्नीसिंह की सबसे कीमती औरत, शिवमूर्ति की तिरियाचरित तथा कसाई बाड़ा, सृजम की बैल बधिया, जया जादवानी की 'मुझे ही होना है बार—बार', उदय प्रकाश की 'पीली छतरी वाली लड़की', अरविन्द जैन की 'लापता लड़की', इन्दुवाली की दूसरी 'औरत होने का सुख' बटुक चर्तुवेदी की 'एक और सीता', इन्दु रश्मि की 'मोहबंध', मालती जोशी की औरत एक रात है, स्वयं प्रकाश का 'आदमी जात का आदमी' उषा महाजन का 'और सावित्री ने काह प्रदेश राम वर्मा की बुधिया की तीन राते' तथा स्वदेश कुमार की एक पुरुष नारी, अल्का सरावगी की दूसरे किले में औरत, प्रथा सक्सेना की जलती छाया, ऐसी रचनाएं है जो हिन्दी कथा जगत में नारी मुक्ति, चेतना, अधिकार, स्वातन्त्रय, उच्श्रृंखलता की बात करती है।

संदर्भ —

1. डा0 कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्व
2. मैत्रेयी पुष्पा : चर्चा हमारा
3. अनामिका : स्त्री विमर्श की उत्तर —गाथा
4. डा0 प्रभा खेतान : भूमण्डलीकरण के दबाव मे नारीवाद (परिषद पत्रिका) (अप्रैल 2003 से 2004)

5. डा0 कुमार विमल : स्त्रीवादी विमर्श
6. मेघा : मध्यकालीन संत काव्य में स्त्री–विमर्श (परिषद पत्रिका)(अप्रैल 2003 से 2004)
7. डा0 सरिता वाशिष्ठ : हिन्दी कथा– साहित्य में नारी–विमर्श